वेदान्त आश्रम की मासिक ई - पत्रिका

वेदान्त पीयूष

वर्ष २२ सितम्बर - २०२२ प्रकाशन - ०९

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

सितम्बर 2022

प्रकाशक

वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

ॐ

सदाशिवसमारम्भाम्

शंकराचार्य मध्यमाम्

अस्मदाचार्य पर्यन्ताम्

वन्दे गुरु परम्पराम्

विषय सूचि

सितम्बर 2022
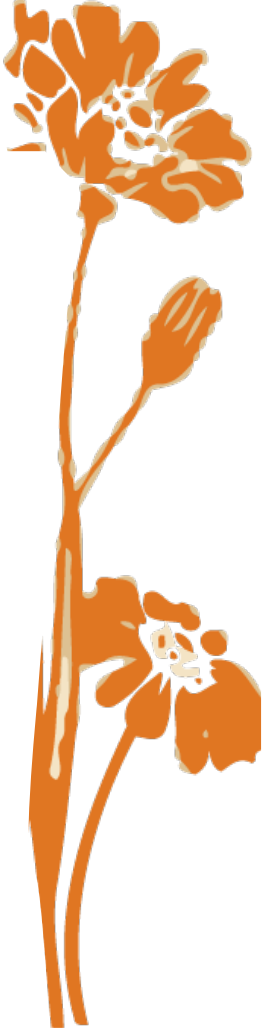
अनाद्यविद्यानिर्वाच्या
कारणोपाधिरुच्यते।
उपाधित्रितयादन्यद्
आत्मानमवधारयेत्॥

(आत्मबोध श्लोक : 14)

अनिर्वचनीय और अनादि अविद्या कारणशरीर है। तथ आत्मा इन तीनों उपाधियों से मुक्त है - यह निश्चय करो।

पूज्य गुरुजी का सन्देश

नामरूप से मुक्ति

नदी अपने उद्गम स्थान, पर्वत जैसे दुर्ग स्थानों से निकलकर निम्न की ओर अनवरत प्रवाहित होती है। मानों समुद्र में विलय होने जा रही है। नदी की इस यात्रा में अनेकों विघ्न आते है, किन्तु उन समस्त बाधाओं को पार कर लेती है। अपनी इस यात्रा में अपने जल से अनेकों को लाभान्वित करती जाती है। यात्रा की समाप्ति समुद्र में विलय से होती है अर्थात् अन्त में मानों अपनी संकुचित अस्मिता, नामरूप का त्याग कर देती है। अध्यात्म दृष्टि से यह घटना बहुत महत्वपूर्ण, दिव्य मानी जाती है। इसलिए जहां पर गंगाजी का सागर में संगम होता है, उस गंगासागर को सब से महान, पवित्र तीर्थ माना गया है। क्योंकि यह घटना एक संकुचित जीव की अध्यात्मयात्रा का सूचक है।

नदी समुद्र में विलय होने से पूर्व भी समुद्रवत् जल ही थी। किन्तु हमने उसे नामरूप से सीमित

नामरूप से मुक्ति

मान लिया था। वैसे ही हर जीव वस्तुतः ब्रह्म होते हुए भी अविचारपूर्वक नामरूप के प्रति महत्व व तादात्म्य करके उनसे पृथक् होने की धारणा से युक्त होकर जीता है। नामरूप में सतत विकार, परिवर्तन, नश्वरता देखने पर भी उसे सत्य मानकर उसमें अस्मिता से युक्त है। नामरूप से तादात्म्य होने मात्र से हम संकुचिता के दायरे में आ गए। उसके उपरान्त हमारी अनवरत चेष्टा संकुचिता से मुक्त होने की बनी रहती है। यही संसार है। उसका कारण रूप के प्रति अभिनिवेश है।

रूप का होना आशीर्वाद, व्यावहारिक दृष्टि से महत्व है। उसे निमित्त बनाकर अनेकों शिक्षाएं प्राप्त की जा सकती है। उसमें सुन्दरता, विविधता, व्यवस्था तथा सृजनात्मकता दीखाई देते है। उससे जगदीश्वर की महिमा का परिचय मिलता है। उन महान, सर्व समर्थ ईश्वर के अस्तित्व की श्रद्धा की दृढ़ता होकर, उनके प्रति समर्पण व भक्ति जगते है। उसीसे मन सूक्ष्म, सात्विक व विचार हेतु समर्थ बनता है। इस प्रकार रूप का आशीर्वाद होते हुए भी उसे ही सत्य व सबकुछ मानना समस्या व संसरण का हेतु बन जाता है; जब कि उसका अस्तित्व पलकें खोलने व बन्ध करने पूरता है।

नामरूप से मुक्ति

रूप से अभिप्राय उसकी ग्राह्यता, अभिव्यक्ति है। जिसमें भी इन्द्रियग्राह्यता है, उन शब्दादि पांचों विषय को रूप ही जानना चाहिए। प्रत्येक इन्द्रिय की अपनी विशिष्ट दुनिया, तत्तद् इन्द्रिय के द्वारा ही ग्राह्य होती है, अन्य से नहीं। यह उसकी संकुचिता, अस्थायित्व, नैमित्तिक होना ही दीखाता है। उसका पारमार्थिक अस्तित्व नहीं होने से मायामय, मिथ्या, देश-काल से परिच्छिन्न है। जैसे रूप वैसे ही नाम की कहानी है। आरम्भ में नाम का प्रयोग अन्य से विलक्षण दर्शाने के लिए प्रयुक्त व्यावहारिक तथ्य है। यह संकुचित वस्तु की विशिष्टता, व्यक्तितत्व दर्शाता है। उसके उपरान्त रूप के अभाव में भी नाम उसका अस्तित्व बनाए रखने का हेतु बनता है। नाम का खेल कि एक शब्द लेकर, हमने उसके साथ विशिष्टता जोड दी। एक ही नाम होने पर भी अपने-अपने तरीके से ग्रहण करके कोई न कोई धारणा उत्पन्न कर लेते है। एवं नाम भी अपने आपमें स्वतंत्र उपाधि बन जाती है। उपाधि होने से संकुचित भी करती है।

नामरूप और उसे सत्ता प्रदान करनेवाले का रहस्य

नामरूप से मुक्ति

> जानने पर नामरूप को छोडने की चेष्टा नहीं किन्तु जाननेमात्र से मानों मुक्त हो गए। जब तक किसी ग्राह्य को ही पकडना चाहते है तो उससे मुक्त नहीं हो पाएंगे। रूप से तादात्म्य खतम होने पर सूक्ष्म को ग्रहण कर सकते है। पहले रूप को मायामय प्रस्तुति, चक्षुमात्र का विषय, मिथ्या जानकर उसकी उपेक्षा करें व सत्य की खोज करें कि रूप के जन्म के पूर्व, समाप्तिके पश्चात् क्या है?

रूप से अपना परिचय समाप्त करके सत्तामात्र से अपना परिचय प्राप्त करें। रूपात्मक धरातल पर आसक्ति किनारे करके स्थायी नित्यतत्त्व से अस्मिता प्राप्त हो। यही चिन्मयीसत्ता रूप के आविर्भाव के पूर्व तथा तिरोभाव के उपरान्त भी रहती है। जिस समय रूप है, उस समय भी उसे सत्ता प्रदान कर रही है। इसके बारे में अवेरनेस उत्पन्न करने के लिए शास्त्र का गुरुमुख से श्रवण आवश्यक है। उसका ज्ञान प्राप्त करके उसकी अवेरनेस का अभ्यास करें। जब रूप से सम्बन्ध छूटकर हम सत्तामात्र होकर स्थित है, तो जन्मादि विकार, औपाधिक संकुचिता, जात्यादि से परिचय छूटता है। हम शरीर में नहीं किन्तु शरीर हममें है। हम असीम, सत्तामात्र सबको आत्मवान कर रहे है। हम अविकारी, असंग, हममें

नामरूप से मुक्ति

नाम रूपों का खेल चल रहा है। सत्ता को अन्यथा देखना अध्यारोप तथा यथावत देखना ज्ञान–रूपात्मक दुनिया से मुक्ति है। नित्य को नित्य जानने की वजह से अनित्य, अध्यारोप स्थानीय रूपात्मक दुनिया से छूटकारा हो जाता है। तब मानों नदी सागर से एक हो गई। इस घटना में कोई चेष्टा नहीं है किन्तु ज्ञान मात्र है कि रूप का कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं। अतः सागर बनने की, कहीं पहुंचने की चाह मोहात्मक, निराधार धारणा से आसक्ति, महत्व की वजह से है। यही संसार है। इस यात्रा में कहीं जाना वा बनना नहीं किन्तु रूप तथा अधिष्ठान का रहस्य जानना है। इस प्रकार नामरूप का रहस्य जानने से ही मुक्ति होती है।

वेदान्त लेख
अहम् ब्रह्मास्मि

अद्वैत की अवस्था

वेदान्त शास्त्र जीवन के परं लक्ष्य की अवस्था को अद्वैत शब्द से प्रतिपादित करते हैं। अद्वैत एक ऐसी अवस्था है कि जहां द्वैत का अभाव है। किसी अन्य का जहां अस्तित्व ही नहीं है। अवस्था ज्ञान से प्राप्त ऐसी प्रबुद्धता व विकास की सूचक है। अद्वैत शब्द पर विचार करने पर अवस्था के साथ साथ प्रक्रिया को भी दर्शाता है। वस्तुतः जीव कभी भी अद्वैत की प्राप्ति नहीं करता।

अद्वैतसिद्धि हमारी पूर्णता व ब्रह्मस्वरूपता की सूचक है। ऐसे गन्तव्य का सूचक कि जहां आगे कोई भेद, खण्ड या सीमा नहीं। ऐसी अवस्था में हम स्वयं जग गएं कि जहां व्यक्ति किसी भी प्रकार की सीमाओं, विकारादि से युक्त रहकर अद्वैत की कल्पना तक नहीं कर सकते। अद्वैत कालविशेष

अद्वैत की अवस्था

या लोकविशेष नहीं, किन्तु हमारी परिपूर्णता की अवस्था का सूचक है। उसमें ऐसा बडप्पन है कि जहां अपने अन्दर ब्रह्माण्ड समाया है। यह सब माया का विलास मात्र, अपने अन्दर स्वप्न की तरह से है। हम स्वयं परमात्मा है, जो प्रयास कर रहा था, उसे कल्पित जानने के द्वारा मानों उसका अन्त हो गया। ऐसी यह एक अवस्था है।

अद्वैत प्रक्रिया का सूचक कैसे है? इस अवस्था की प्राप्ति के लिए द्वैत का निषेध होना आपेक्षित है। इस प्रकार यह अद्वैत शब्द ही प्रक्रिया देता है। किसी चीज का पृथक् अस्तित्व होने पर, उसे महत्व देने के उपरान्त प्रतिक्रिया आदि होते है। जहां अपने से पृथक् को कल्पित, मिथ्या जाना तो मानों उसका अभाव हो गया। उसके साथ ही समस्त प्रतिक्रिया का अभाव हो गया। वास्तविक द्वैत दृष्टा के द्वारा देखा हुआ भेद नहीं है। अतः सब में अपनापन देखना यह अद्वैत की प्रक्रिया नहीं है; किन्तु अद्वैत की प्रक्रिया में जीव का होना ही बाधक है।

अद्वैत की अवस्था

जब जीव दैवीगुणों से युक्त होता है तो उसमें नकारात्मक प्रतिक्रिया का अभाव होता है, मन शान्त, सूक्ष्म व विचारशील होता है। ईश्वरीय आस्था व संवेदना से युक्त होकर चारों ओर अपनेपन का विस्तार करते हुए सब में एकता देख रहा है। ऐसा धर्ममार्गगामी जीव वसुधैव कुटुम्बकम् भी भावना से युक्त होता है। पूर्णता की श्रद्धा के बहुत दूरगामी प्रभाव होते है। हम पूर्णता की श्रद्धा से युक्त होकर जीते है, किन्तु पूर्ण नहीं है। अर्थात् द्वैत में ही जी रहे है। क्योंकि जीव का रहना ही अज्ञान है।

अद्वैत की अवस्था हमारी परिपूर्णता की अवस्था का सूचक है।

जीव की वजह से ही खण्ड, द्वैत है। हम एक कर्ता-भोक्ता जीव है व हमारी स्वतंत्र सत्ता है - यह मान्यता ही दोषवान है। उसके सत्य होने के उपरान्त ही जीवन का संसरण का अध्याय आरम्भ होता है। हम सीमित शरीरादि है, बाकी भी उसी धरातल पर अतः शरीर, मन बुद्धि के गुण दोष महत्वपूर्ण होते है। व्यक्ति को महत्व देना ही द्वैत

अद्वैत की अवस्था

है। इसके उपरान्त संसार का दुष्चक्र आरम्भ हो जाता है। वास्तविक द्वैत जीव की स्वतंत्र सत्ता का होना है, यह ही विवेक है। यह विवेक हो जाएं कि जीव अनित्य है तथा साक्षी नित्य है। वही स्वप्रकाश, सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म है। जीव के परीक्षण के साथ तत्पद अर्थात् ईश्वर की शोध करते हुए सच्चिदानन्द देख लेते हैं। अपने और अन्य के बारे में यह निश्चय दीखाई पडे। इसके अलावा जो भी दीखें वह अध्यारोपमात्र है। अन्ततः यह देख लेते हैं कि सब हमारी ही अभिव्यिक्ति है। हमसे अन्यत् कुछ भी नहीं है, इस प्रकार अद्वैत की प्रक्रिया के आश्रय से अद्वैत की अवस्था सिद्ध होती है।

विभूति दर्शन

लघु वाक्यवृत्ति

श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

क्षणे क्षणेऽन्यथाभूता
धीविकल्पाशिचति र्न तु।
मुक्तासु सूत्रवद्बुद्धि
विकल्पेषु चितिः स्थिता।।

बुद्धि की वृत्तियां प्रतिक्षण बदलती रहती हैं, किन्तु उनकी साक्षी चेतनता नहीं। जैसे मोतियों की माला के प्रत्येक मोतियों में सूत्र अनुस्यूत हैं, वैसे ही यह चेतनता समस्त बुद्धिवृत्तिको व्यात करती हैं।।

लघु वाक्यवृत्ति

पूर्व श्लोक में आचार्य ने बताया कि चेतनता रूपादि विषय और हमारे द्वारा उन पर कल्पित गुण आदि को आत्मवान करते हुए सभी विकल्पों का अनुवर्तन करती है। इसे इन कल्पित अध्यारोप से विवेक के द्वारा पृथक् कर देखना चाहिए। अध्यारोप को जानने के लिए सजगतापूर्वक देखना होगा कि क्या नित्य है और क्या अनित्य है।

'विषयों में गुण-दोषादि बुद्धि के द्वारा की गई कल्पनामात्र है।'

जब तक अनित्य की अनित्यता नहीं देखते है, तब तक उनके प्रति महत्वबुद्धि बनी रहती है और वह हमें सुख-दुःख देने में सक्षम हो जाता है। उनमें सुखादि के सामर्थ्य की कल्पना ही आसक्ति, पराधीनता आदि से युक्त करके संसरण का हेतु बनती है। जब अनित्य

लघु वाक्यवृत्ति

की अनित्यता जानने है, तब ही उससे विमुख होकर अन्य पहलू अर्थात् नित्य को देख पाते हैं। जिस प्रकार एक मोतियों की माला में अनेकों मणकें है। माला का अस्तित्व तथा प्रत्येक मणकों को माला में पिरोए रखने का हेतु एक ही सूत्र होता है। किन्तु जब तक हमारा ध्यान मणकों की ओर होता है, तब तक हमारा ध्यान उसके आधारभूत सूत्र/धागें की ओर जाता ही नहीं है। मणकों का महत्व ही मानों आवरण सा बन जाता है और वही हमारी दृष्टि से सूत्र को ओजल करने का हेतु बन जाता है। उसी दृष्टान्त को आचार्य यहां नित्य-अनित्य का विवेक करने में घटाते हैं।

हमारा जीवन मानों विविध विषयों की अनुभूति की एक मालारूप है। हम किसी विषय के प्रति सचेत होते है, तो उस विषयक वृत्ति मन में आती है। हम बहिर्मुख होकर

लघु वाक्यवृत्ति

> इन्द्रियों के माध्यम से सतत कोई न कोई विषयक अनुभूति करते हैं और तत्तद् विषय की वृत्ति मन में आती है। कुछ देर के लिए जिस विषय की वृत्ति आती है, उस विषय को गौण करके वृत्तिमात्र की ओर ध्यान ले जाएं। यह दीखता है कि एक समय मानों हमारे मन में 'अ' वस्तु विषयक वृत्ति आई, दूसरे क्षण हम किसी अन्य विषय के कोन्शियस हुए और हममें 'ब' विषयक वृत्ति जाग्रत हुई। जब 'ब' विषयक के कान्शियस हुए तो 'ब' वृत्ति से मानों 'अ' वृत्ति स्थानान्तिरित हो गई। इस प्रकार सतत एक वृत्ति आती है, दूसरी उसे स्थानान्तरित करके उसका स्थान ले लेती है। और इस प्रकार सुन्दर अनुभूतियों की माला निर्मित होती है।

किन्तु जब हम इस पहलू के कान्शियस होते है कि, यह वृत्तियां प्रतिक्षण बदलती रहती है। अतः यह अनित्य है, उसे महत्व देना मोह मात्र है। प्रतिक्षण परिवर्तित होने के उसके स्वभाव को देख उसकी अनित्यता का निश्चय करते है और उसे महत्वविहीन जानते है। अपनी दृष्टि में जिसका महत्व नहीं होता है, उसकी ओर से ध्यान हट जाता है, तब उसक जो

भी आधारभूत तत्व है, उसकी ओर ध्यान जाता है कि जो इसे प्रकाशित कर जान रहा है। इसीलिए वह उन प्रत्येक बदलते विषय व वृत्तियों को देख पाता है। यही सूत्रस्थानीय चेतनतत्त्व है, जो समस्त बुद्धिवृत्तियों को व्याप्त करता है। प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहे विषय व तद्विषयक वृत्ति को महत्वविहीन करने पर ही उसके आधारभूत नित्य, प्रकाशित, प्रकाशक साक्षी की ओर ध्यान केन्द्रित होता है।

इस प्रकार नित्यानित्य विवेक से अनित्य, दृश्य वृत्तियों को गौण करके उसके प्रकाशक दृष्टा की ओर ध्यान केन्द्रित ले जाने का अभ्यास आरम्भ में करना चाहिए।

गीता मननम्

गीता में योग

गीता में योग

गीता के प्रत्येक अध्याय को विद्वान् महात्माओं ने योग की संज्ञा दी हैं। योग शब्द का अर्थ कहीं जुड़ना है। अन्ततः परमात्मा से एक होना योग की पराकाष्ठा है। इस साध्य के लिए प्रयुक्त साधन को भी योग शब्द से जाना गया है। यह साधन कर्म और ज्ञान स्तरीय होता है। एवं योग शब्द साधन और साध्य दोनों का सूचक है। सम्पूर्ण यात्रा योग शब्द से बताई जाती है। कर्मक्षेत्र में योगसाधना पात्रता की उत्पत्ति के लिए हैं, जो कि शरीर से आरम्भ करके वैचारिक धरातल पर होती है।

योग में कर्म महत्वपूर्ण होता है। कर्म परिवर्तन का क्षेत्र है। कर्म से कुछ न कुछ चेष्टा व परिवर्तन करने के द्वारा अपने व्यक्तितत्व के प्रत्येक धरातल को परिवर्तित करके अनुकुल बनाया जाता है। जब तक औपाधिक धरातल को ज्ञान के अनुकुल नहीं

गीता में योग

बनाया जाता है, तब तक कर्म के क्षेत्र को त्याग करके दूसरी निष्ठा में प्रवेश नहीं हो सकता। अतः कर्म की उपेक्षा कतई नहीं करनी चाहिए।

ज्ञान का अर्थ किसी चीज को यथावत् देखना है। जहां कुछ भी परिवर्तन नहीं। आज अपने आपको इतना उलजा दिया है कि हम देख नहीं पाते है। आज की स्थिति में हम वशीकृत व्यक्ति ही है। अतः ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी है कि किसी चीज को यथावत देख पाएं। मन संस्कारों के वशीभूत है। हम सब चीजें संस्कारों के ही वशीभूत होकर देखते हैं। वह संस्कार राग–द्वेषात्मक, उचित व अनुचित के बारे में है। समस्त सही गलत की ध ारणाएं सुख–दुःख, पसंद–नापसंद, राग–द्व ेष पर आश्रित है। हमारे वर्तमान लक्ष्य, आदतें, धर्म–अधर्म आदि सब कुछ मन के संस्कार पर आश्रित है। यह अपने ज्ञान के अभिमान का ही सूचक है। वस्तुतः बाहर से हमें सुख–दुःख प्राप्त नहीं होते है। व्यक्ति की धारणाएं, रागादि की ही संतुष्टि होती है। यह

गीता में योग

बाहरी सत्यता नहीं है, किन्तु व्यक्तिगत है। अपनी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाएं हमारे संस्कारों पर ही निर्भर होते है। इन संस्कारों का व्यापक असर होता है। ज्ञान के झूठे अभिमान से युक्त होते है, उसकी वजह से विचार भी अनावश्यक लगता है।

'ज्ञान का महत्व वासना के वशित्व से मुक्त करता है।'

संस्कारों के साम्राज्य में हमारी बुद्धि को जगने का मौका नहीं मिलता। बुद्धि के विचार का दायरा भी सही गलत के निर्णय के उपरान्त संस्कार पर आश्रित होता है। बुद्धि बहुत गहराई में सो रही है। ऐसे में ज्ञान सरल होते हुए भी ज्ञान के लिए पात्र नहीं, क्योंकि सही–गलत का निश्चय कर लिया है। अपने आपको संस्कारों व वासना के वशीकरण से मुक्त करने पर ही खुले मन से सत्य को देख पाते है। ज्ञान का महत्व वासना के वशित्व से मुक्त करना है। उसका ही प्रतिफल उसके बन्धन से मुक्ति है।

यह निश्चय व अनुभव होना चाहिए कि हम वासना व संस्कार के वशीभूत होकर जी रहे है। उससे हमें मुक्त होना है। हम न अपने मन को जानते हैं, न

गीता में योग

सुखादि के स्वरूप जानते है, यह एहसास ही ज्ञान की पात्रता जगाता है। योग की यह ही भूमिका कि अपने आपको ज्ञान के लिए पात्र बनाता है, ज्ञान के लिए अनुकुलता व प्रेरणा वा दिशा प्रदान करता है।

इसके व्यापक अर्थ को देखें तो शरीर की अनुकुलता योग बन जाती है। विचार के लिए जो भी सहायक होता है, वह योग बन जाता है। निरपेक्षता, संवेदनशीलता, प्रेम तथा अज्ञान की विनम्रता विचार के लिए आपेक्षित है। हर परिस्थिति में प्रतिक्रिया का अभाव, हर्षादि से असंग रहना भी योग ही कहा जाता है। इन समस्त पहलूओं पर भगवान ने गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए साधन और साध्य स्थानीय योग की मीमांसा की है, जिसकी वजह से प्रत्येक अध्याय ही योग की संज्ञा को प्राप्त है।

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री लक्ष्मण चरित्र

— २२ —

बन्दउं लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका॥

श्री लक्ष्मण चरित्र

वनयात्रा के दौरान स्वर्णमृग के शिकार हेतु पहुंचे प्रभु श्रीराम के मुख से दर्दनाक चीख सुनते ही सीता माता ने विह्वल होकर लक्ष्मण को प्रभु की सहाय के लिए जाने को कहा। यह सुनकर वे मां से प्रश्न करते हैं कि जिनकी भ्रूकुटीविलास से सृष्टि का विनाश हो जाता है, क्या उन प्रभु पर कभी संकट आ सकता है? पर सीताजी का ध्यान उस ओर जाता ही नहीं है। वे यह देख रही हैं कि राघव के संकट की बात सुनकर लक्ष्मण हंस रहे हैं। इस हंसी ने उन्हें विक्षिप्त सा बनाकर वह सब कुछ भुला दिया जो इन वर्षों में घटित हुआ था। लक्ष्मण का सर्वत्याग, उनकी अनन्य निष्ठा, अतुलनीय सेवा की कोई स्मृति उनमें शेष नहीं रह जाती। और तब वे ऐसा कुछ कह जाती हैं जिसके लिखने का साहस गोस्वामीजी भी नहीं बटोर पातें। वे 'मरम वचन जब सीता बोला' कह कर ही इसे टाल जाते हैं।

श्री लक्ष्मण चरित्र

यदि उसे सुनकर लक्ष्मण आवेश में कुछ बोल पड़ते तो यह अस्वाभाविक न होता। अति गम्भीर लक्ष्मणजी ने संशय के इस हलाहल को पचा लिया। उनके बोलने का अर्थ होता उस विष को उगल देना। वे प्रत्युत्तर में कठोर वाणी के द्वारा मां को दग्ध करने की कल्पना भी नहीं कर सकते। अब भी मां के विवेक में उनकी अविचल आस्था ज्यों की त्यों बनी हुई है। उन्होंने यही मान लिया कि मां के मुख से जो कुछ निकल रहा है, वह उनका कथन हो ही नहीं सकता। लगता है, अन्तर्यामी प्रभु ही किसी योजना की पूर्ति हेतु उन्हें यहां से दूर बुलाना चाहते हैं। वे तत्काल वहां से चलने का निर्णय लेते हैं किन्तु यह निर्णय किसी आवेशजन्य प्रतिक्रिया का परिणाम नहीं था।

यह स्पष्ट ही है कि वे केवल 'प्रभु प्रेरित' के रूप में ही कार्य कर रहे थे। सत्य तो यह है कि उनकी यही अविचल आस्था उन्हें टूटने या अशिष्ट होने से रोकती है। अन्याय और अनौचित्य के प्रति सहिष्ण ुता लक्ष्मण इतने बड़े मार्मन्तक आघात को जिस तरह झेल लेते हैं, वह प्रभु और मैथिली के प्रति अमानित्व की पराकाष्ठा का परिचायक है। वे प्रभु

श्री लक्ष्मण चरित्र

के पास जाने के पहले माता की रक्षा के लिए जिस रेखा का निर्माण करते हैं, उसकी विलक्षणता अप्रतिम थी। उन्हें विश्वास था कि उनके द्वारा खिंची गई रेखा को लांघने का सामर्थ्य मानव, देवता और दानव आदि किसी में भी नहीं है। पर उसकी यह विचित्रता थी कि मैथिली उसे लांघ सकती थीं। उन्होंने रेखा को ऐसे कारागार का रूप नहीं दिया था कि जिसमें विदेहजा बन्दिनी की भांति निवास करें। विदेहजा उनके लिए वन्दनीया हैं। वे केवल उनसे अनुरोध कर सकते हैं। उन्हें आदेश देने की तो वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। यह रेखा ही मैथिली की सारी कटूक्तियों का उत्तर थी। यह रेखा उनके अग्निमय पावन–चरित्र का ही प्रतीक थी; जिसे लांघना किसीके लिए सम्भव नहीं था। विदेहजा ने संशय के माध्यम से और बाद में रेखा लांघकर उन्हें वह सम्मान नहीं दिया जिसके वे वस्तुतः अधिकारी थे। उन्होंने सच्चे साधु लक्ष्मण पर अविश्वास किया और नकली साधु रावण के द्वारा ठगी गई। अपहरण के क्षणों में उन्होंने पश्चात्ताप भरे स्वर में यह स्वीकार किया कि लक्ष्मण के प्रति कटूक्तियों का फल ही मैं पा रही हूं।

मां मैथिली का व्यवहार उनके प्रति भले ही निष्ठुर हो गया हो, पर लक्ष्मण की श्रद्धा अविचल थी।

श्री लक्ष्मण चरित्र

उनका पता लगाने और लौटा कर पुनः ले आने की अभिलाषा और व्यग्रता का परिचय अनेकों अवसरों पर मिला। सुग्रीव राज्य पाकर इस कार्य को भुला बैठा तो उसे दण्डित करने का कार्य वे प्रभु पर नहीं छोडना चाहते थे। राघव भी सुग्रीव को दण्ड देने के लिए ही प्रस्तुत थे, पर इस कार्य को वे 'कल' पर टालना चाहते थे। किन्तु एक दिन की यह देर भी लक्ष्मण के लिए असह्य थी। वे इसी क्षण दण्ड देना चाहते थे। उनके उतावलेपन को देखकर प्रभु को उन्हें समझाना पड़ा कि उद्देश्य की पूर्ति के लिए डराना भर ही इष्ट है।

आदिशंकराचार्यजी विरचित

विषय : साधना पंचकम्

(सम्पूर्ण अध्यात्मयात्रा)

२० अगस्त से ३० सितम्बर २०२२

जन्माष्टमी से पितृपक्ष की समाप्ति तक

कार्यक्रम के प्रायोजन में सहयोग करके पुण्यलाभ अर्जित करें।

स्वामी आत्मानन्दजी

www.vmission.org.in / vashram.in@gmail.com;
Mb / WhatsApp - 7000361938

– २५ –

उत्तरकाशी
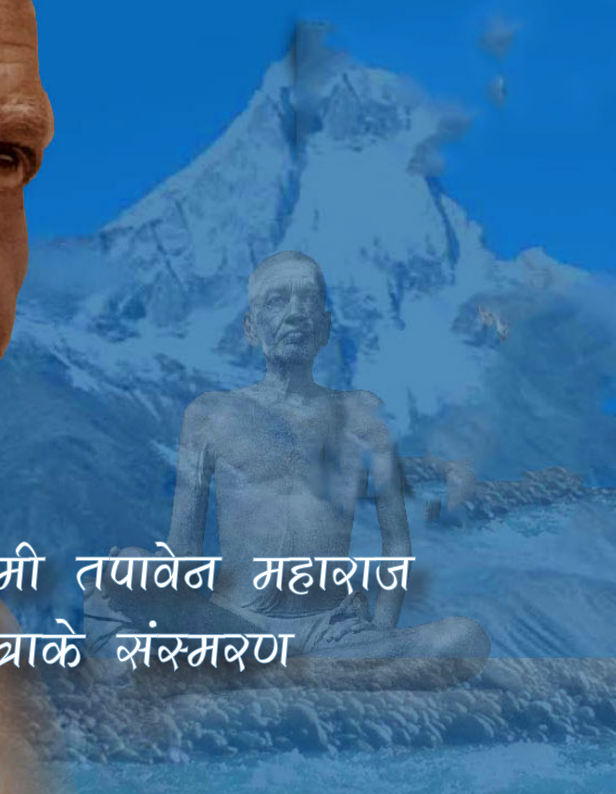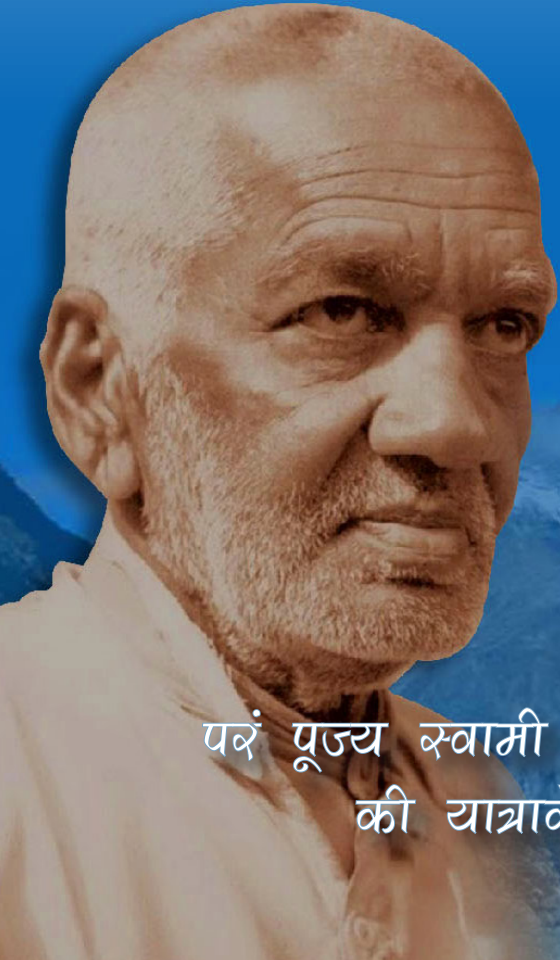
परं पूज्य स्वामी तपोवन महाराज
की यात्राके संस्मरण

जीवन्मुक्त

लीजिएं, अब दूसरी ओर देखिएं! वनकुक्कुट और वन मयूर धीरे धीरे चलते हुए जो भी अन्नकण मिल जाते है, उन्हें इच्छानुसार चोंच मारकर चुग लेते है। ‘यह नही’, ‘वह नही’ की शिकायत किये बिना और दरिद्रता का स्वप्न में भी अनुभव किए बिना संतोष के साथ जीवन बितानेवाले ये बडे ही सुकृति है। लेकिन दूसरी तरह के छोटे पक्षियों का एक समूह क्षुधा से पीडित हो, खाने की इच्छा में इस वन में खाना पाये बिना, दूर देशों की ओर आकाशमार्ग से शीघ्रता से उडता जा रहा है। दूसरे कुछ पक्षी खाद और वल्मीकों में स्वेच्छापूर्वक आनंद करनेवाले कीडे मकोडों तथा पिपीलिकाओं को निगल जाने मे लगे है।

जीवन्मुक्त

शिव! शिव! इनको इतना पता नही है कि ये इन छोटे मोटे जीवों को खा जाते है तो इनसे बडे जीव कभी इन्हें भी खा जाएंगे।

''अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम्
फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम्।''

यह सर्वत्र प्रचलित ईश्वरीय मर्यादा की महिमा समझना कितना ही कठिन है। लीजिएं, ये दूसरे कुछ विहंग आहार-विहारों से विराम पाकर, उँचे वृक्षों की शाखाओं पर बैठे दीर्घस्वर में मधुर गान अलापते संतोष का अनुभव कर रहे है। वन में सर्वाधिपत्य जमाने वाले राजा कहां है? जान पडता है कि व्याघ्रादि जन्तु मानो यह समझकर अपने घरों में ही विलीन बैठे हैं कि अपना अधिकार जमाने का यह समय नही हैं, और इसीलिए वे बाहर आकर अपना प्रभाव प्रकट नहीं करते। इस प्रकार मनुष्यसमाज में जो विषयभोग, विषय नैमित्तिक कलह, सांपत्तिक दरिद्रता, जन्ममरण, राजस्व प्रजात्व, आदि व्यवहार दिखायी देते है, वही इस प्राणीसमाज में भी अनवरत होते रहते है। ऐसे

समाज में होनेवाली ऐसी बातें ही तो समाचारपत्र सुनाते रहते हैं। प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करने में जो पुरुष समर्थ हैं, उसकी बुद्धि में सारा संसार सभी चेष्टाओं के साथ उपस्थित हो जाता है; और यदि उपस्थित हो जाता है तो उसे परोक्ष लोकवार्ताएं पढने की क्या आवश्यकता? प्रतिदिन तीन बार निकलनेवाला पत्र भी कोई नया समाचार नहीं लाता है। जो हैं ही नहीं, वह होता भी नहीं हैं, और जो है उसके होने में किसी नवीनता के लिए स्थान भी नही है। प्रकृति के रहस्य को, दूसरी बातों में कहें तो ईश्वर की महिमा को जो नही जानता, उसके लिए तो सब नये और निराले है। पर प्रकृति के रहस्य को जाननेवाले के लिए किसी में कोई नवीनता या आश्चर्य होता ही नही है। अच्छा अब प्रकृत विषय पर आएँ।

पौराणिक गाथा

महादेव का ताण्डवनृत्य

महादेव का ताण्डवनृत्य

भगवान शिव अपने ताण्डवनृत्य की वजह से नटराज भी कहे जाते हैं। उनका ताण्डव कभी उनकी प्रसन्नता की अभिव्यक्तिरूप होता है तो कभी उनके क्रोध की। जब वे ताण्डव करते हैं तब जटाओं के आपस में टकराने से भयंकर नाद पैदा होता है और दिशाएं डोलने लगती है, उनके कदमों की थाप से पृथ्वी डगमगाने लगती है। नृत्य के दौरान उनके तेजी से बदलती हाथ की विविध मुद्राओं से ग्रह–नक्षत्र भी मानों अपने भ्रमण का मार्ग भूलकर भ्रमित से हो जाते है। उनकी जटाएं आपस में टकराकर मानों भयंकर नाद उत्पन्न करती है। पूरे ब्रह्माण्ड में मानों प्रलय आ रहा हो – ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु उनके इस कार्य में भी लोककल्याण की भावना होती है। उनकी इस प्रतीत होने वाली निष्ठुरता में भी करुणा ही निहित होती है। उनके ताण्डव नृत्य के विषय में एक प्रसंग शिवपुराण में प्राप्त होता है।

महादेव का ताण्डवनृत्य

एक बार एक असुर ने ब्रह्माजी की आराधना करते हुए घोर तपस्या की। उनकी तपस्या से ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उसे मनोवांछित वर मांगने को कहा। वर देने के लिए ब्रह्माजी वचनबद्ध हो गए। तब असुर ने तीनों लोक के आधिपत्य से साथ साथ अमरत्व का वरदान मांग लिया।

यह सुनकर ब्रह्माजी धर्मसंकट में पड गएं। आसुरी वृत्तिवाले के हाथ में सत्ता और अमरत्व का वरदान देने से सृष्टि में उत्पात मचाना, समस्त जीवजगत, प्रकृति को आतंकित करना और सृष्टि में अधर्म का साम्राज्य स्थापित हो जाएंगा यह किसी भी दृष्टि से उचित नहीं था। उन्होंने असुर से समय मांगा और कहा इसके लिए यह मुहूर्त उचित नहीं है। हम तुम्हें कुछ देर में आकर वर मांगने का उचित समय बताते हैं। असुर ब्रह्माजी की बात मान गया और वहीं प्रतीक्षा करने लगा।

ब्रह्माजी ने महादेवजी के पास जाकर पूरी घटना सुनाई, तब महादेवजी ने मुस्कुराते हुए कहा कि आप निश्चिंत रहिएं। ब्रह्माजी के साथ मिलकर एक योजना बनाई। उस योजना के अनुरूप ब्रह्माजी असुर के पास पहुंचे और उनसे कहा कि जब शाम ढल रही हो और रात्रि का आगमन होने वाला हो - वह संध्याकाल सर्वोचित रहेगा। उस

महादेव का ताण्डवनृत्य

समय तुमने वर मांगा और हमने तथास्तु कह दिया तो तुम अमर हो जाओंगे। किन्तु उस क्षण को तुम चूक गए तो इस तुम्हारा वरदान का अवसर विफल हो जाएगा और तुम्हारे द्वारा की हुई तपस्या फलित नहीं होगी। असुर प्रसन्न होकर चला गया।

योजना अनुसार महादेवजी सूर्यास्त के पूर्व ही ब्रह्मलोक चले गएं और वहां जाकर सुन्दर मनमोहक ताण्डवनृत्य करने लगें। उसी समय वह असुर भी वहां आ पहुंचा, भगवान के नृत्य को वह देखते ही रह गया। उसमें इतना मोहित हो गया कि अपनी सुध बुध खो बौठा और नृत्य का आनन्द लेने लगा। जब नृत्य समाप्त हुआ तब उनको अपना होश आया और उसने देखा कि संध्या का वह क्षण व्यतीत हो चुका है। ब्रह्माजी के वचन अनुसार अब वह अपने वरदान को पाने के उस अवसर से वंचित हो गया।

इस प्रकार भगवान की प्रत्येक लीला, चाहे भयंकर ताण्डव भी क्यों न हो, उसमें करुणा से प्रेरित समस्त सृष्टि का कल्याण ही निहित होता है।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

आश्रम समाचार
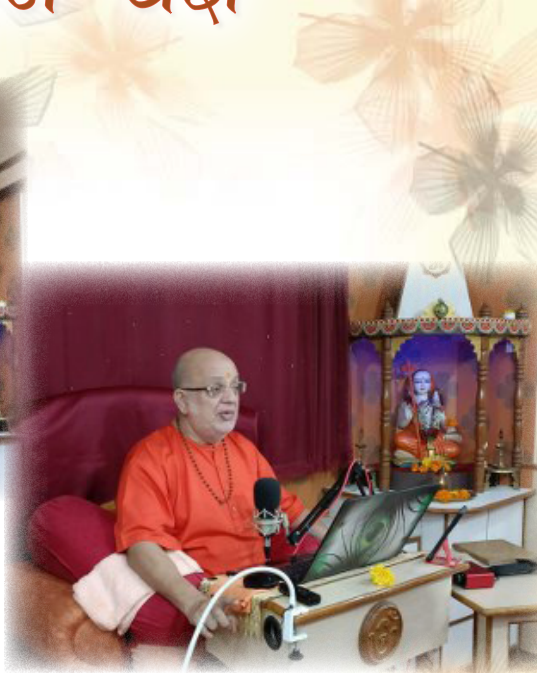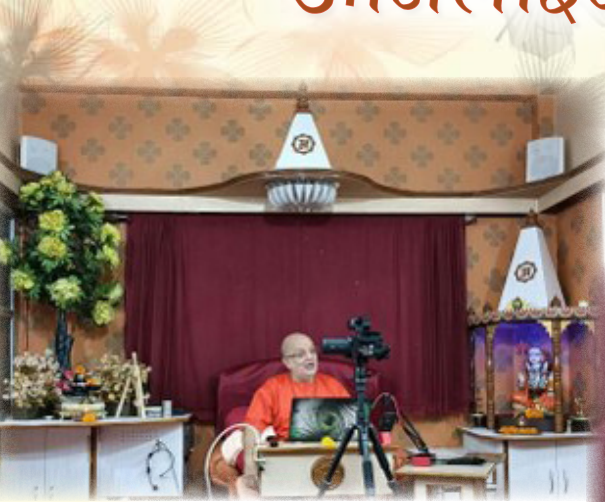
ओनलाइन यज्ञ

पूज्य स्वामिनीजी का जन्मदिन

आश्रम समाचार

पूज्य स्वामिनीजी का जन्मदिन

आश्रम समाचार

पूज्य स्वामिनीजी का जन्मदिन

आश्रम समाचार
पूज्य गुरुजी के आशीर्वचन
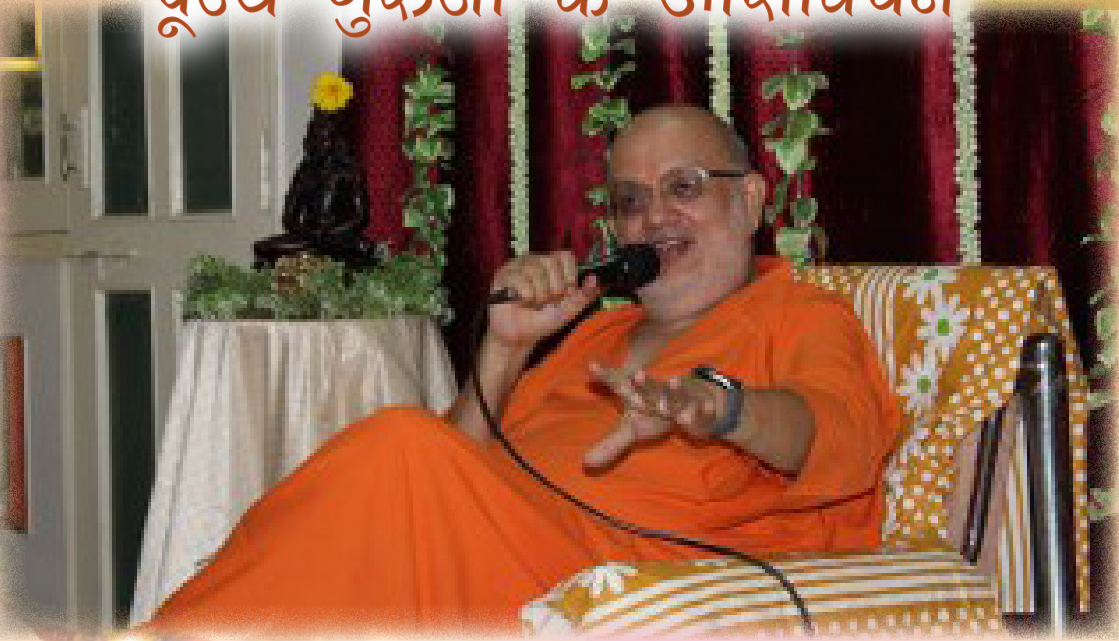
आश्रम समाचार

७५ वां स्वतंत्रता दिन

आश्रम समाचार

हर घर तिरंगा

आश्रम समाचार

आश्रम समाचार
कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्
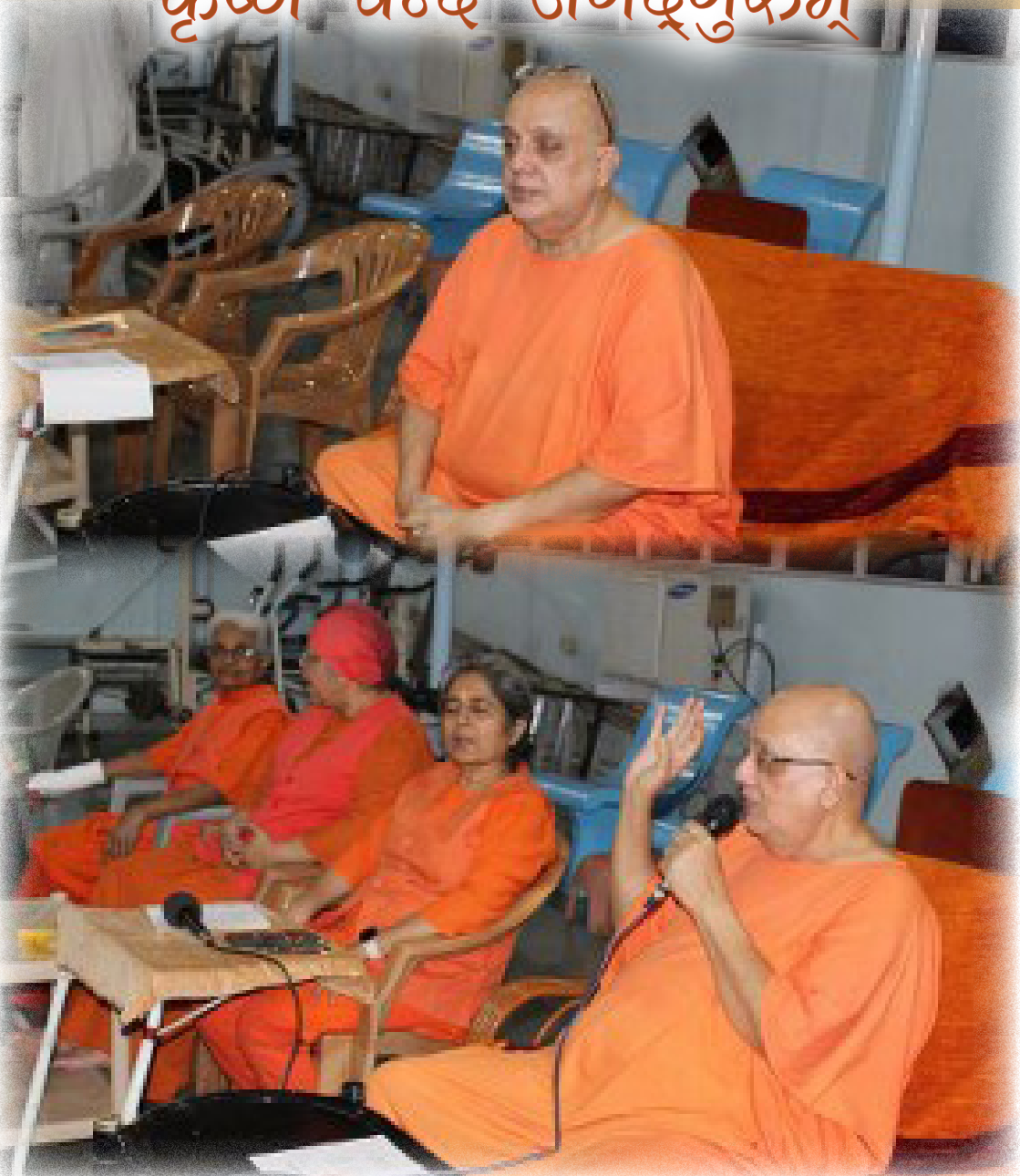
आश्रम समाचार

ओम् विष्णवे नमः

आश्रम समाचार

भएं प्रकट कृपाला

आश्रम समाचार

जय कनैया लाल की
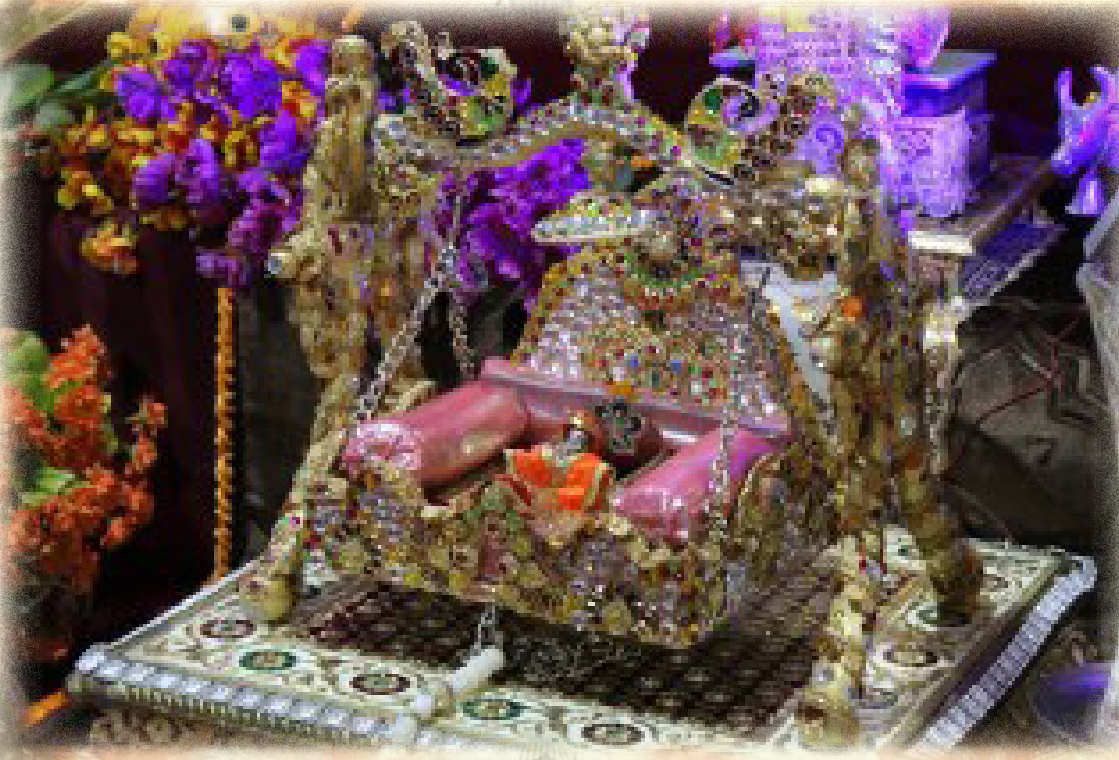
आश्रम समाचार
नन्द घेर आनन्द भयो

आश्रम समाचार

ओम् नमः शिवाय

आश्रम समाचार

जय शिव ओंकारा

आश्रम समाचार

रक्षाबन्धन पर्व
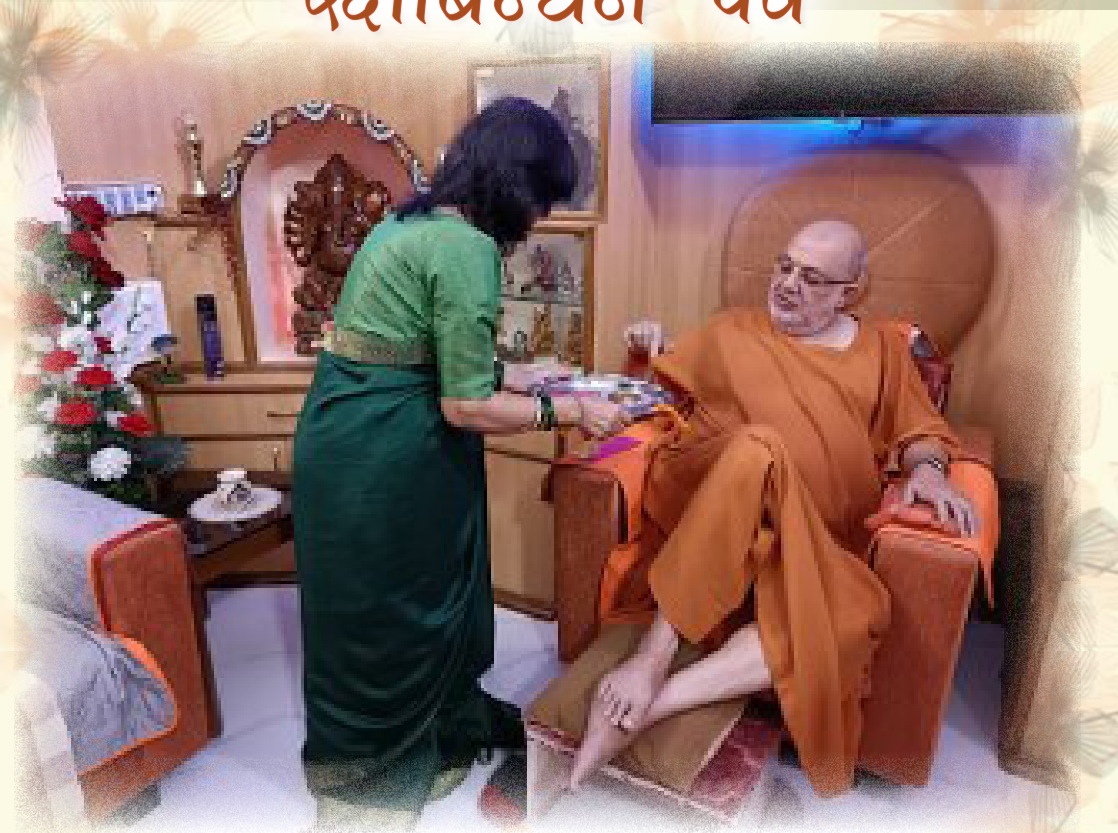
आश्रम समाचार

रक्षाबन्धन पर्व

आश्रम समाचार

ओम् नमः शिवाय

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

10 से 15 अक्टूबर 2022

गीता ज्ञान शिविर

सोमानी भवन, ऋषीकेश

पूज्य गुरुजी द्वारा

गीता अध्याय - १२

---

22 अगस्त से 01 अक्टूबर 2022

ओनलाईन ज्ञानयज्ञ

पूज्य गुरुजी द्वारा

साधना पंचकम्

Internet

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

~ Sadhna Panchakam

~ Upadesh Saar

~ Atma Bodha Pravachan

- Sundar Kand Pravachan

~ Prerak Kahaniya

- Ekshloki Pravachan

~ Sampoorna Gita Pravachan

- Kathopanishad Pravachan

- Shiva Mahimna Pravachan

- Hanuman Chalisa

~ Shiv Mahimna Stotram (Sw. Samatananda)

INTERNET

Audio Pravachans

~ Sadhna Panchakam

~ Drig Drushya Vivek

~Upadesh Saar

~ Prerak Kahaniya

~ Sampoorna Gita Pravachan

~ Atmabodha Lessons

Vedanta Ashram YouTube Channel

Vedanta & Dharma Shastra Group

Monthly eZines

~ Vedanta Sandesh - Sept '22

~ Vedanta Piyush - Aug '22